अच्छी तकनीक वह है जिसका इस्तेमाल दिखाई न पड़े।
(पटकथा-16 के साक्षात्कार से)

सत्यजित राय

जन्मः सन् 1921, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)
प्रमुख फ़िल्में: अपराजिता, अपू का संसार, जलसाघर, देवी चारुलता, महानगर, गोपी गायेन बाका बायेन, पथेर पांचाली *(बांग्ला)*; शतरंज के खिलाड़ी, सद्गति *(हिंदी)*
प्रमुख रचनाएँ: प्रो. शंकु के कारनामे, सोने का किला, जहाँगीर की स्वर्ण मुद्रा, बादशाही अँगूठी आदि।
प्रमुख सम्मानः फ्रांस का लेजन डी ऑनर, पूरे जीवन की उपलब्धियों पर ऑस्कर और भारतरत्न सहित फ़िल्म जगत का हर महत्वपूर्ण सम्मान
मृत्युः सन् 1992

© NCERT not to be republished

भारतीय सिनेमा को कलात्मक ऊँचाई प्रदान करने वाले फ़िल्मकारों में सत्यजित राय अगली कतार में हैं। इनके निर्देशन में पहली फ़ीचर फ़िल्म ***पथेर पांचाली*** *(बांग्ला) 1955 में प्रदर्शित हुई, उसने राय को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाला भारतीय निर्देशक बना दिया। इनकी फ़ीचर फ़िल्मों की कुल संख्या तीस के लगभग है। इन फ़िल्मों के ज़रिए इन्होंने फ़िल्म विधा को समृद्ध ही नहीं किया बल्कि इस माध्यम के बारे में निर्देशकों और आलोचकों के बीच एक समझ विकसित करने में भी अपना योगदान दिया। ध्यान देने की बात है कि इनकी ज़्यादातर फ़िल्में साहित्यिक*

कृतियों पर आधारित हैं। इनके पसंदीदा साहित्यकारों में बांग्ला के विभूति भूषण बंद्योपाध्याय से लेकर हिंदी के प्रेमचंद तक शामिल हैं। फ़िल्मों के पटकथा-लेखन, संगीत-संयोजन एवं निर्देशन के अलावा राय ने बांग्ला में बच्चों एवं किशोरों के लिए लेखन का काम भी बहुत ही संजीदगी के साथ किया है। इनकी लिखी कहानियों में जासूसी रोमांच के साथ-साथ पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षी का सहज संसार भी है।

अपू के साथ ढाई साल नामक संस्मरण ***पथेर पांचाली*** फ़िल्म के अनुभवों से संबंधित है जिसका निर्माण भारतीय फ़िल्म के इतिहास में एक बहुत बड़ी घटना के रूप में दर्ज है। इससे फ़िल्म के सृजन और उसके व्याकरण से संबंधित कई बारीकियों का पता चलता है। यही नहीं, जो फ़िल्मी दुनिया हमें अपने ग्लैमर से चुंधियाती हुई जान पड़ती है, उसका एक ऐसा सच हमारे सामने आता है, जिसमें साधनहीनता के बीच अपनी कलादृष्टि को साकार करने का संघर्ष भी है। इस पाठ का भाषांतर बांग्ला मूल से ***विलास गिते*** ने किया है।

किसी फ़िल्मकार के लिए उसकी पहली फ़िल्म एक अबूझ पहेली होती है। बनने या न बन पाने की अमूर्त शंकाओं से घिरी। फ़िल्म पूरी होती है तो फ़िल्मकार जन्म लेता है। अपनी पहली फ़िल्म की रचना के दौरान हर फ़िल्मकार का अनुभव-संसार इतना रोमांचकारी होता है कि वह उसके जीवन में बचपन की स्मृतियों की तरह हमेशा जीवंत बना रहता है। इस अनुभव संसार में दाखिल होना उस बेहतरीन फ़िल्म से गुज़रने से कम नहीं है।

© NCERT not to be republished

11066CH03

अपू के साथ ढाई साल

पथेर पांचाली फ़िल्म की शूटिंग का काम ढाई साल तक चला था! इस ढाई साल के कालखंड में हर रोज़ तो शूटिंग होती नहीं थी। मैं तब एक विज्ञापन कंपनी में नौकरी करता था। नौकरी के काम से जब फ़ुर्सत मिलती थी, तब शूटिंग करता था। मेरे पास उस समय पर्याप्त पैसे भी नहीं थे। पैसे खत्म होने के बाद, फिर से पैसे जमा होने तक शूटिंग स्थगित रखनी पड़ती थी।

शूटिंग का आरंभ करने से पहले फ़िल्म में काम करने के लिए कलाकार इकट्ठा करने का एक बड़ा आयोजन हुआ। विशेषकर अपू की भूमिका निभाने के लिए छह साल का लड़का मिल ही नहीं रहा था। आखिर मैंने अखबार में उस संदर्भ में एक इश्तहार दिया।

रासबिहारी एवेन्यू की एक बिल्डिंग में मैंने एक कमरा भाड़े पर लिया था, वहाँ पर बच्चे इंटरव्यू के लिए आते थे। बहुत-से लड़के आए, लेकिन अपू की भूमिका के लिए मुझे जिस तरह का लड़का चाहिए था, वैसा एक भी नहीं था। एक दिन एक लड़का आया। उसकी गर्दन पर लगा पाउडर देखकर मुझे शक हुआ। नाम पूछने पर नाज़ुक आवाज़ में वह बोला–'टिया'। उसके साथ आए उसके पिता जी से मैंने पूछा, 'क्या अभी-अभी इसके बाल कटवाकर यहाँ ले आए हैं?' वे सज्जन पकड़े गए। सच छिपा नहीं सके बोले, ''असल में यह मेरी बेटी है। अपू की भूमिका मिलने की आशा से इसके बाल कटवाकर आपके यहाँ ले आया हूँ।''

© NCERT not to be republished

विज्ञापन देकर भी अपू की भूमिका के लिए सही तरह का लड़का न मिलने के कारण मैं तो बेहाल हो गया। आखिर एक दिन मेरी पत्नी छत से नीचे आकर मुझसे बोली, 'पास वाले मकान की छत पर एक लड़का देखा, ज़रा उसे बुलाइए तो!' आखिर हमारे पड़ोस के घर में रहने वाला लड़का सुबीर बनर्जी ही 'पथेर पांचाली' में 'अपू' बना। फ़िल्म का काम आगे भी ढाई साल चलने वाला है, इस बात का अंदाज़ा मुझे पहले नहीं था। इसलिए जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, वैसे-वैसे मुझे डर लगने लगा। अपू और दुर्गा की भूमिका निभाने वाले बच्चे अगर ज़्यादा बड़े हो गए, तो फ़िल्म में वह दिखाई देगा! लेकिन मेरी खुश किस्मती से उस उम्र में बच्चे जितने बढ़ते हैं, उतने अपू और दुर्गा की भूमिका निभाने वाले बच्चे नहीं बढ़े। इंदिरा ठाकरुन की भूमिका निभाने वाली अस्सी साल उम्र की चुन्नीबाला देवी ढाई साल तक काम कर सकी, यह भी मेरे सौभाग्य की बात थी।

शूटिंग की शुरुआत में ही एक गड़बड़ हो गई। अपू और दुर्गा को लेकर हम कलकत्ता* से सत्तर मील पर पालसिट नाम के एक गाँव गए। वहाँ रेल-लाइन के पास काशफूलों से भरा एक मैदान था। अपू और दुर्गा पहली बार रेलगाड़ी देखते हैं- इस सीन की शूटिंग हमें करनी थी। यह सीन बहुत ही बड़ा था। एक दिन में उसकी शूटिंग पूरी होना नामुमकिन था। कम-से-कम दो दिन लग सकते थे। पहले दिन जगद्धात्री पूजा का त्योहार था। दुर्गा के पीछे-पीछे दौड़ते हुए अपू

पथेर पांचाली फ़िल्म का एक दृश्य

* *वर्तमान में कोलकाता*

काशफूलों के वन में पहुँचता है। सुबह शूटिंग शुरू करके शाम तक हमने सीन का आधा भाग चित्रित किया। निर्देशक, छायाकार, छोटे अभिनेता-अभिनेत्री हम सभी इस क्षेत्र में नवागत होने के कारण थोड़े बौराए हुए ही थे, बाकी का सीन बाद में चित्रित करने का निर्णय लेकर हम घर पहुँचे। सात दिन बाद शूटिंग के लिए उस जगह गए, तो वह जगह हम पहचान ही नहीं पाए! लगा, ये कहाँ आ गए हैं हम? कहाँ गए वे सारे काशफूल। बीच के सात दिनों में जानवरों ने वे सारे काशफूल खा डाले थे! अब अगर हम उस जगह बाकी आधे सीन की शूटिंग करते, तो पहले आधे सीन के साथ उसका मेल कैसे बैठता? उसमें से 'कंटिन्युइटी' नदारद हो जाती!

उस सीन के बाकी अंश की शूटिंग हमने उसके अगले साल शरद ऋतु में, जब फिर से वह मैदान काशफूलों से भर गया, तब की। उसी समय रेलगाड़ी के भी शॉट्स लिए। लेकिन रेलगाड़ी के इतने शॉट्स थे कि एक रेलगाड़ी से काम नहीं चला। एक के बाद एक तीन रेलगाड़ियों को हमने शूटिंग के लिए इस्तेमाल किया। सुबह से लेकर दोपहर तक कितनी रेलगाड़ियाँ उस लाइन पर से जाती हैं–यह पहले ही टाइम-टेबल देखकर जान लिया था। हर एक ट्रेन एक ही दिशा से आने वाली थी। जिस स्टेशन से वे रेलगाड़ियाँ आने वाली थीं, उस स्टेशन पर हमारी टीम के अनिल बाबू थे। रेलगाड़ी स्टेशन से निकलते समय अनिल बाबू भी इंजिन-ड्राइवर की केबिन में चढ़ते थे। क्योंकि गाड़ी के शूटिंग की जगह के पास आते ही बॉयलर में कोयला डालना ज़रूरी था, ताकि काला धुआँ निकले। सफ़ेद काशफूलों की पृष्ठभूमि पर अगर काला धुआँ नहीं आया, तो दृश्य कैसे अच्छा लगेगा?

'पथेर पांचाली' फ़िल्म में जब यह सीन दिखाई देता है, तब दर्शक पहचान नहीं पाते कि उस सीन में हमने तीन अलग-अलग रेलगाड़ियों का इस्तेमाल किया है। आज के डीज़ल और बिजली पर चलने वाले इंजनों के युग में वह दृश्य उस प्रकार से हम चित्रित न कर पाते।

आर्थिक अभाव के कारण बहुत दिनों तक हमें अलग-अलग समस्याओं से जूझना पड़ा। एक उदाहरण देता हूँ।

© NCERT not to be republished

मूल उपन्यास में अपू और दुर्गा के 'भूलो' नामक पालतू कुत्ते का उल्लेख है। गाँव से ही हमने एक कुत्ता प्राप्त किया और वह भी हमसे ठीक बर्ताव करने लगा। फ़िल्म में एक दृश्य ऐसा है: अपू की माँ सर्वजया अपू को भात खिला रही है। भूलो कुत्ता दरवाज़े के सामने आँगन में बैठकर अपू का भात खाना देख रहा है। अपू के हाथ में छोटे तीर-कमान हैं। खाने में उसका पूरा ध्यान नहीं है। वह माँ की ओर पीठ करके बैठा हुआ है। वह तीर-कमान खेलने के लिए उतावला है।

अपू खाते-खाते ही कमान से तीर छोड़ता है। उसके बाद खाना छोड़कर तीर वापस लाने के लिए जाता है। सर्वजया बाएँ हाथ में वह थाली और दाहिने हाथ में निवाला लेकर बच्चे के पीछे दौड़ती है, लेकिन बच्चे के भाव देखकर जान जाती है कि वह अब कुछ नहीं खाएगा। भूलो कुत्ता भी खड़ा हो जाता है। उसका ध्यान सर्वजया के हाथ में जो भात की थाली है, उसकी ओर है।

इसके बाद वाले शॉट में हमें ऐसा दिखाना था कि सर्वजया थाली में बचा भात एक गमले में डाल देती है, और भूलो वह भात खाता है। लेकिन यह शॉट हम उस दिन ले नहीं सके, क्योंकि सूरज की रोशनी खत्म हुई और उसी के साथ हमारे पास जो पैसे थे, वे भी खत्म हुए!

छह महीने बाद, फिर से पैसे इकट्ठा होने पर हम फिर बोडाल गाँव में उस सीन का बाकी अंश चित्रित करने के लिए गए। लेकिन वहाँ जाने पर समाचार मिला कि भूलो कुत्ता अब इस दुनिया में नहीं है। अब क्या होगा?

खबर मिली कि भूलो जैसा दिखने वाला और एक कुत्ता गाँव में है। अब लाओ पकड़ के उस कुत्ते को!

सचमुच! यह कुत्ता भूलो जैसा ही दिखता था। वह भूलो से बहुत ही मिलता-जुलता था। उसके शरीर का रंग तो भूलो जैसा बादामी था ही, उसकी दुम का छोर भी भूलो के दुम की छोर जैसा ही सफ़ेद था। आखिर यह फेंका हुआ भात उसने खाया, और हमारे उस दृश्य की शूटिंग पूरी हुई। फ़िल्म देखते समय यह बात किसी के भी ध्यान में नहीं आती कि एक ही सीन में हमने 'भूलो' की भूमिका में दो अलग-अलग कुत्तों से काम लिया है!

और सिर्फ़ कुत्ते के संदर्भ में ही नहीं, आदमी के संदर्भ से भी ऐसी ही समस्या से 'पथेर पांचाली' की शूटिंग के दौरान उलझना पड़ा था।

श्रीनिवास नामक घूमते मिठाईवाले से मिठाई खरीदने के लिए अपू और दुर्गा के पास पैसे नहीं हैं। वे तो मिठाई खरीद नहीं सकते, इसलिए अपू और दुर्गा उस मिठाईवाले के पीछे-पीछे मुखर्जी के घर के पास जाते हैं। मुखर्जी अमीर आदमी हैं। वे तो मिठाई ज़रूर खरीदेंगे और उनका मिठाई खरीदना देखने में ही अपू और दुर्गा की खुशी है।

इस दृश्य का कुछ अंश चित्रित होने के बाद हमारी शूटिंग कुछ महीनों के लिए स्थगित हो गई। पैसे हाथ आने पर फिर जब हम उस गाँव में शूटिंग करने के लिए गए, तब खबर मिली कि श्रीनिवास मिठाईवाले की भूमिका जो सज्जन कर रहे थे, उनका देहांत हो गया है। अब पहले वाले श्रीनिवास का मिलता-जुलता दूसरा आदमी कहाँ से मिलेगा?

आखिर श्रीनिवास की भूमिका के लिए हमें जो सज्जन मिले, उनका चेहरा पहले वाले श्रीनिवास से मिलता-जुलता नहीं था, लेकिन शरीर से वे पहले श्रीनिवास जैसे ही थे। उन्हीं पर हमने दृश्य का बाकी अंश चित्रित किया। फ़िल्म में दिखाई देता है कि एक नंबर श्रीनिवास बाँसबन से बाहर आता है और अगले शॉट में दो नंबर श्रीनिवास कैमरे की ओर पीठ करके मुखर्जी के घर के गेट के अंदर जाता है। 'पथेर पांचाली' फ़िल्म अनेक लोगों ने एक से अधिक बार देखी है, लेकिन श्रीनिवास के मामले में यह बात किसी के ध्यान में आई है, ऐसा मैंने नहीं सुना!

इस श्रीनिवास के सीन में ही एक शॉट के वक्त हम बिलकुल तंग आ गए थे और वह भी उस भूलो कुत्ते की वजह से। छोटे से पुकुर के पार मिठाईवाला खड़ा है, और इस पार, अपने घर के पास अपू-दुर्गा मिठाईवाले की ओर ललचाई नज़र से देख रहे हैं। 'क्यों, मिठाई खरीदेंगे?' मिठाईवाले के इस सवाल का वे 'ना' में जवाब देते हैं, तब मिठाईवाला मुखर्जी के घर की ओर जाने लगता है। दुर्गा अपू से कहती

है, 'चल, हम भी जाएँगे।' भाई–बहन दौड़ने लगते हैं और उसी समय पीछे झुरमुट में बैठा भूलो कुत्ता भी छलांग लगाकर उनके साथ दौड़ने लगता है।

हमें ऐसा सीन लेना था, लेकिन मुश्किल यह कि यह कुत्ता कोई हॉलीवुड का सिखाया हुआ नहीं था। इसलिए यह बताना मुश्किल ही था कि वह अपू–दुर्गा के साथ भागता जाएगा या नहीं। कुत्ते के मालिक से हमने कहा था, 'अपू–दुर्गा जब भागने लगते हैं, तब तुम अपने कुत्ते को उन दोनों के पीछे भागने के लिए कहना।'

लेकिन शूटिंग के वक्त दिखाई दिया कि वह कुत्ता मालिक की आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है। इधर हमारा कैमरा चालू ही था। कीमती फ़िल्म ज़ाया हो रही थी और मुझे बार–बार चिल्लाना पड़ रहा था–'कट्! कट्!'

अब यहाँ धीरज रखने के सिवा दूसरा उपाय नहीं था। अगर कुत्ता बच्चों के पीछे दौड़ा, तो ही वह उनका पालतू कुत्ता लग सकता था। आखिर मैंने दुर्गा से अपने हाथ में थोड़ी मिठाई छिपाने के लिए कहा, और वह कुत्ते को दिखाकर दौड़ने को कहा। इस बार कुत्ता उनके पीछे भागा, और हमें हमारी इच्छा के अनुसार शॉट मिला।

पैसों की कमी के कारण ही बारिश का दृश्य चित्रित करने में बहुत मुश्किल आई थी। बरसात के दिन आए और गए, लेकिन हमारे पास पैसे नहीं थे, इस कारण शूटिंग बंद थी। आखिर जब हाथ में पैसे आए, तब अक्टूबर का महीना शुरू हुआ

था। शरद ऋतु में, निरभ्र आकाश के दिनों में भी शायद बरसात होगी, इस आशा से मैं अपू और दुर्गा की भूमिका करने वाले बच्चे, कैमरा और तकनीशियन को साथ लेकर हर रोज़ देहात में जाकर बैठा रहता था। आकाश में एक भी काला बादल दिखाई दिया, तो मुझे लगता था कि बरसात होगी। मैं इच्छा करता, वह बादल बहुत बड़ा हो जाए और बरसने लगे।

आखिर एक दिन हुआ भी वैसा ही। शरद ऋतु में भी आसमान में बादल छा गए और धुआँधार बारिश शुरू हुई। उसी बारिश में भीगकर दुर्गा भागती हुई आई और उसने पेड़ के नीचे भाई के पास आसरा लिया। भाई-बहन एक-दूसरे से चिपककर बैठे। दुर्गा कहने लगी—'नेबूर-पाता करमचा, हे वृष्टी घरे जा!*' बरसात, ठंड, अपू का बदन खुला, प्लास्टिक के कपड़े से ढके कैमरे को आँख लगाकर देखा, तो वह ठंड लगने के कारण सिहर रहा था। शॉट पूरा होने के बाद दूध में थोड़ी ब्रांडी मिलाकर दी और भाई-बहन का शरीर गरम किया। जिन्होंने 'पथेर पांचाली' फ़िल्म देखी है, वे जानते ही हैं कि वह शॉट बहुत अच्छा चित्रित हुआ है।

शूटिंग की दृष्टि से गोपाल ग्राम की तुलना में बोडाल गाँव हमें अधिक उपयुक्त लगा। अपू-दुर्गा का घर, अपू का स्कूल, गाँव के मैदान, खेत, पुकुर, आम के पेड़, बाँस की झुरमुट ये सभी बातें बोडाल गाँव में और आस-पास हमें मिलीं। अब उस गाँव में बिजली आ गई है, पक्के घर, पक्के रास्ते बने हैं। उस ज़माने में वे नहीं थे।

उस गाँव में हमें बहुत बार जाना पड़ा। बहुत बार रहना भी पड़ा, इसलिए वहाँ के लोगों से भी हमारा परिचय हुआ। उन लोगों में एक बहुत अद्‌भुत सज्जन थे। उन्हें हम 'सुबोध दा' कहकर पुकारते थे। वे साठ-पैंसठ साल के थे। उनका माथा गंजा था। वे अकेले ही एक झोंपड़े में रहते और दरवाज़े पर बैठकर खुद ही से कुछ-न-कुछ बड़बड़ाते रहते थे। हम उस गाँव में एक फ़िल्म की शूटिंग करने वाले हैं यह जानकर वे गुस्सा हो गए। हमें देखने पर वे चिल्लाते—'फ़िल्म वाले आए हैं,

---

** नीबू के पत्ते खट्टे हो गये है, हे बादल अब घर जाओ (वापिस जाओ)*

मारो उनको लाठियों से!' पूछताछ करने पर लोगों ने बताया कि वे मानसिक रूप से बीमार थे। बाद में 'सुबोध दा' से हमारा अच्छा परिचय हुआ। वे हमें पास बुलाकर, दरवाज़े में बैठकर वायलिन पर लोकगीतों की धुनें बजाकर सुनाते थे। बीच-बीच में हमारे कानों में फुसफुसाते, 'वो साइकिल पे जा रहा आदमी देख रहे हो न, वह कौन है, जानते हो? वह है रुजवेल्ट[1]! पक्का पाजी उनके मत से दूसरा एक था चर्चिल[2], एक था हिटलर[3], तो एक था अब्दुल गफ्फार खान[4]! सभी उनके मतानुसार पाजी थे, उनके दुश्मन थे।

हम जिस घर में शूटिंग करते थे, उसके पड़ोस में एक धोबी रहता था। उसके कारण हमें बहुत परेशानी होती थी। वह भी थोड़ा-सा पागल था और कभी भी 'भाइयों और बहनों!' कहकर किसी राजकीय मुद्दे पर लंबा भाषण शुरू करता था। फ़ुर्सत के समय में उसके भाषण पर हमें कुछ आपत्ति नहीं थी, लेकिन अगर शूटिंग के समय वह भाषण शुरू करता, तो हमारे साउंड का काम प्रभावित हो सकता था। उस धोबी के रिश्तेदारों ने अगर हमारी मदद न की होती, तो वह धोबी सचमुच ही एक सिरदर्द बन जाता!

जिस घर में हम 'पथेर पांचाली' की शूटिंग करते थे, वह घर हमें एकदम ध्वस्त

---

1. *रुजवेल्ट (1882-1945)- पूरा नाम फ्रैंकलिन डिलॉनो रुजवेल्ट। अमेरिका के 32वें राष्ट्रपति (1933 से 1945 तक) इन्हें एफ.डी.आर. भी कहा जाता था। इन्हीं के कार्यकाल में एटमबम के मैनहटन प्रोजेक्ट पर काम शुरू हुआ था।*
2. *चर्चिल (1874-1965)- द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटेन के प्रधानमंत्री थे। 1953 में इन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार भी मिला था।*
3. *हिटलर (1889-1945)-जर्मनी के तानाशाह चांसलर (1933-1945 तक) तथा नाज़ीपार्टी के लीडर थे।*
4. *अब्दुल गफ्फार खान (1890-1988)- ये पख्तूनों (अफगान) के नेता थे और भारत और पाकिस्तान के विभाजन के खिलाफ थे। जिसके कारण इन्हे अपना अंतिम समय पाकिस्तान की जेल में गुज़ारना पड़ा। इन्हे सीमांत गांधी के नाम से भी जाना जाता है।*

© NCERT not to be republished

अवस्था में मिला था। उसके मालिक कलकत्ता में रहते थे। उनसे हमने वह घर शूटिंग के लिए भाड़े पर लिया था। उस घर की मरम्मत करके उसे शूटिंग के लिए ठीक-ठाक करवाने में हमें लगभग एक महीना लगा।

उस घर के एक हिस्से में एक के पास एक ऐसे कुछ कमरे थे। वे हमने फ़िल्म में नहीं दिखाए। उन कमरों में हम अपना सामान रखा करते थे। एक कमरे में रिकॉर्डिंग मशीन लेकर हमारे साउंड-रिकॉर्डिस्ट भूपेन बाबू बैठा करते थे। हम शूटिंग के वक्त उन्हें देख नहीं सकते थे, फिर भी उनकी आवाज़ सुन सकते थे। हर शॉट के बाद हम उनसे पूछते, 'साउंड ठीक है न?' भूपेन बाबू इस पर 'हाँ' या 'ना' जवाब देते।

एक दिन शॉट के बाद मैंने साउंड के बारे में उनसे सवाल किया, लेकिन कुछ भी जवाब नहीं आया। फिर एक बार पूछा, 'भूपेन बाबू, साउंड ठीक है न?' इस पर भी जवाब न आने पर मैं उनके कमरे में गया, तो देखा कि एक बड़ा-सा साँप उस कमरे की खिड़की से नीचे उतर रहा था। वह साँप देखकर भूपेन बाबू सहम गए थे और उनकी बोलती बंद हो गई थी।

वह साँप हमने वहाँ आने पर कुछ ही दिनों के बाद देखा था। उसे मार डालने की इच्छा होने पर भी स्थानीय लोगों के मना करने के कारण हम उसे मार नहीं सके। वह 'वास्तुसर्प' था और बहुत दिनों से वहाँ रह रहा था।...

अभ्यास

पाठ के साथ

1. ***पथेर पांचाली*** फ़िल्म की शूटिंग का काम ढाई साल तक क्यों चला?
2. ***अब अगर हम उस जगह बाकी आधे सीन की शूटिंग करते, तो पहले आधे सीन के साथ उसका मेल कैसे बैठता? उसमें से 'कंटिन्युइटी' नदारद हो जाती*** – इस कथन के पीछे क्या भाव है?
3. किन दो दृश्यों में दर्शक यह पहचान नहीं पाते कि उनकी शूटिंग में कोई तरकीब अपनाई गई है?

4. 'भूलो' की जगह दूसरा कुत्ता क्यों लाया गया? उसने फ़िल्म के किस दृश्य को पूरा किया?
5. फ़िल्म में श्रीनिवास की क्या भूमिका थी और उनसे जुड़े बाकी दृश्यों को उनके गुज़र जाने के बाद किस प्रकार फ़िल्माया गया?
6. बारिश का दृश्य चित्रित करने में क्या मुश्किल आई और उसका समाधान किस प्रकार हुआ?
7. किसी फ़िल्म की शूटिंग करते समय फ़िल्मकार को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उन्हें सूचीबद्ध कीजिए।

पाठ के आस-पास

1. तीन प्रसंगों में राय ने कुछ इस तरह की टिप्पणियाँ की हैं कि ***दर्शक पहचान नहीं पाते कि...*** या ***फ़िल्म देखते हुए इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया कि...*** इत्यादि। ये प्रसंग कौन से हैं, चर्चा करें और इसपर भी विचार करें कि शूटिंग के समय की असलियत फ़िल्म को देखते समय कैसे छिप जाती है।
2. मान लीजिए कि आपको अपने विद्यालय पर एक डॉक्यूमैंट्री फ़िल्म बनानी है। इस तरह की फ़िल्म में आप किस तरह के दृश्यों को चित्रित करेंगे? फ़िल्म बनाने से पहले और बनाते समय किन बातों पर ध्यान देंगे?
3. ***पथेर पांचाली*** फ़िल्म में इंदिरा ठाकरून की भूमिका निभाने वाली अस्सी साल की चुन्नीबाला देवी ढाई साल तक काम कर सकीं। यदि आधी फ़िल्म बनने के बाद चुन्नीबाला देवी की अचानक मृत्यु हो जाती तो सत्यजित राय क्या करते? चर्चा करें।
4. पठित पाठ के आधार पर यह कह पाना कहाँ तक उचित है कि फ़िल्म को सत्यजित राय एक कला-माध्यम के रूप में देखते हैं, व्यावसायिक-माध्यम के रूप में नहीं?

भाषा की बात

1. पाठ में कई स्थानों पर तत्सम, तद्भव, क्षेत्रीय सभी प्रकार के शब्द एक साथ सहज भाव से आए हैं। ऐसी भाषा का प्रयोग करते हुए अपनी प्रिय फ़िल्म पर एक अनुच्छेद लिखें।
2. हर क्षेत्र में कार्य करने या व्यवहार करने की अपनी निजी या विशिष्ट प्रकार की शब्दावली होती है। जैसे ***अपू के साथ ढाई साल*** पाठ में फ़िल्म से जुड़े शब्द शूटिंग, शॉट, सीन आदि। फ़िल्म से जुड़ी शब्दावली में से किन्हीं दस की सूची बनाइए।
3. नीचे दिए गए शब्दों के पर्याय इस पाठ में ढूँढ़िए और उनका वाक्यों में प्रयोग कीजिए—
इश्तहार, खुशकिस्मती, सीन, वृष्टि, जमा

Reprint 2025-26

शब्द-छवि

कालखंड	–	समय का एक हिस्सा
स्थगित	–	रोका हुआ, कुछ समय के लिए मुल्तवी किया हुआ
भाड़े पर	–	किराए पर
कंटिन्युइटी	–	निरंतरता, तारतम्यता
शॉट्स	–	दृश्यों को शूट करना
साउंड रिकॉर्डिस्ट	–	आवाज़ की रिकॉर्डिंग करने वाला
पुकुर	–	पोखर
नवागत होना (किसी क्षेत्र में)	–	नए क्षेत्र या विषय को जानना
नदारद	–	गायब
भात	–	पके हुए चावल
बॉयलर	–	रेलगाड़ी के इंजन का वह हिस्सा, जिसमें कोयला डाला जाता है
वास्तुसर्प	–	वह सर्प जो घर में अक्सर दिखाई देता है। मान्यता के अनुसार उसे कुलदेवता (बांग्ला में वास्तुसर्प) कहते हैं

© NCERT not to be republished